

विज्ञापन ने बदला मीडिया का चाल, चरित्र एवं चेहरा

डॉ. अवध बिहारी सिंह*

भारत में पत्रकारिता को लेकर एक खास तरह की पवित्रता बोध जनमानस में रही है। देश की आजादी की लड़ाई में एक हथियार की तरह इसका इस्तेमाल जनचेतना जगाने के लिए किया गया। आजादी के लिए सम्पूर्ण जीवन को समर्पित करने वाले पत्रकार स्व० बाबूराव विष्णु पराड़कर की दृष्टि में “समाचारपत्र समाज का प्रतिबिम्ब होना चाहिए और उसे अपने पाठकों के सामने उच्च आदर्श भी रखना चाहिए। समाज की प्रकृत अवस्था का वर्णन, गुणदोष विवेचन, सुधारमार्ग—प्रदर्शन और मनोरंजन में सब समाचारपत्रों के कर्तव्य है।”¹ इसीलिए तो इसे लोकतंत्र का चौथा खंभा, लोकतंत्र का प्रहरी, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रतीक, कमजोर की आवाज आदि रूपों में पाठक देखता है। वैसे तो आजादी के बाद से ही भारतीय पत्रकारिता मिशन के रास्ते से भटकने लगी थी। किन्तु सन 1990 से विश्वस्तर पर बदलाव को गति देने में मीडिया की अहम भूमिका रही। इससे भारतीय मीडिया अछूती नहीं रही। मीडिया में त्वरित गति से सूचना संग्रह एवं संप्रेषण के लिए नयी-नयी तकनीकों को अंगीकार करना शुरू कर दिया। ऐसे में अखबार के प्रकाशन में लगने वाली भारी पूँजी के चलते इसने उद्योग का रूप ले लिया जिसके चलते मीडिया कारपोरेट घरानों में कैद होने लगी। करोड़ों की पूँजी लगाने वाले उद्योगपतियों ने मीडिया के परम्परागत मूल्य और आमजन की अपेक्षाएँ जैसे मिशनरी संकल्पों से हट कर इसे कारोबार का रूप देना शुरू कर दिया। अब तो समाचारपत्र, न्यूज चैनल भी साबुन, टूथपेस्ट, क्रीम के व्यवसाय की तर्ज पर ही संचालित हो रहे हैं। मुख्यधारा की मीडिया तो आमजन, दलित, गरीब एवं गाँवों से जुड़े मुद्दों को दरकिनार कर अधिक से अधिक विज्ञापन पाने के चक्कर में अभिजात्य वर्ग के हितों का समर्थक बन गयी है। विज्ञापन मीडिया का मेरूदण्ड होता है किन्तु विज्ञापन को मुनाफाखोरी का माध्यम बनाकर मीडिया का अपने उद्देश्यों एवं आदर्शों से मुख मोड़ना एक गम्भीर समस्या है।

*प्रवक्ता जनसंचार, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

एक ओर तो भारतीय मीडिया लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ बनकर शुद्ध व्यवसाय करते हुए भी अनेकों प्रकार की सरकारी छूट तथा विशेषाधिकारों का लाभ उठा रही है। वहीं जनहित से जुड़ने के कारण प्रिन्ट मीडिया को अखबार, मैगजीन की बिक्री से होने वाली आय तथा विज्ञापनों के कारोबार पर कोई टैक्स नहीं देना पड़ता है। इतनी सरकारी सुविधा का लाभ उठाने वाले मीडिया घराने आपातकाल के दौरान प्रेस पर सेंसरशिप लगाने से या कुछ राज्य सरकारों द्वारा मीडिया पर अंकुश लगाने के प्रयास मात्र से ही चिल्लाने चीखने लगते हैं कि सरकार अभिव्यक्ति की आजादी का गला घोट रही है लेकिन मीडिया घरानों ने अधिकाधिक मुनाफा के चक्कर में बाजार का नियंत्रण स्वीकार करते समय कोई शोरगुल नहीं किया। इसे चुपचाप स्वतः स्वीकार कर लिया जो सेंसरशिप से ज्यादा प्रभावी है। ऐसा इसलिए किया क्योंकि विज्ञापन मीडिया की आर्थिक व्यवस्था अर्थात् मुनाफा कमाने की प्रक्रिया को गति देने के लिए मीडिया यथास्थितिवाद का पोषक और संरक्षक होकर अभिजात्य वर्ग के हितों का समर्थक हो जाता है। इसीलिए तो एडवर्ड एस. हरमन और रॉबर्ट डब्लू मैक्वेस्नी ने इस परिघटना को सेल्फ सेंसरशिप कहा है।²

मिशन न होकर कारोबार बन चुकी पत्रकारिता जब से कारपोरेट घरानों की कठपुतली बनी है तब से मुनाफाखोरी इसका मुख्य लक्ष्य है। मीडिया के इस कारोबार में मुख्य रूप से पाठकों/दर्शकों को विज्ञापन दाताओं के हाथों बेचकर जनसंचार माध्यमों का यह उद्योग 80-90 प्रतिशत तक मुनाफा कमा रहा है। आज मीडिया उद्योग का प्रमुख उद्देश्य अभिजात्य पाठकों/दर्शकों को विज्ञापन दाताओं को सूचनाओं और समाचारों के द्वारा बेचकर मुनाफा कमाना हो गया है। मीडिया इंडस्ट्री के इस धिनौने कार्य को उजागर करते हुए वरिष्ठ पत्रकार भूपेन्द्र सिंह ने लिखा है कि “इस मीडिया ने दर्शकों को नागरिक के बजाय सिर्फ उपभोक्ता में तब्दील कर उनमें कम कीमत में ज्यादा सूचनाओं तक पहुँचने का नशा पैदा कर दिया है। अस्सी पृष्ठ का अखबार ढाई तीन रूपये में या सौ रूपये में दो सौ चैनल पा कर वो खुद को धन्य समझता है लेकिन यह हालात ठीक उसी तरह से हैं जैसे कोई किसी को हर रोज देह और चेतना को नष्ट करने वाले तरह-तरह के नशे मुप्त में करवाए। सिर्फ मुनाफा कमाने के मकसद से निकल रहे अखबार, टीवी, रेडियो और इंटरनेट इस तरह की नशाखोरी को बढ़ाने के कारण ही फल-फूल रहा है।”³

कारपोरेट घरानों से संचालित हो रही मुख्यधारा की मीडिया उच्चवर्ग की विकृति मानसिकता को संतुष्ट करने हेतु बिगबॉस, राखी का इंसाफ, और नचबलिये जैसे बाजारु कार्यक्रमों को दिखाकर पश्चिमी सभ्यता का संचारक बनता जा रहा है। विज्ञापन के द्वारा मुनाफा कमाने के उद्देश्य से जनसरोकार से नाता तोड़कर शहरी संस्कृति का पोषक बनता जा रहा है। मुख्यधारा की मीडिया के बहुरूपियान

को उजागर करते हुए प्रो. रामशरण जोशी लिखते हैं कि “पत्रकारिता के मूल चरित्र को ध्यान में रखकर प्रेस को राज्य का चौथा स्तम्भ कहा गया था लेकिन आज आर्थिक प्रभु वर्ग प्रतिष्ठानी मीडिया की लाइफ लाइन है। यह किंचित भी मिशनवादी नहीं शुद्ध व्यावसायिक है। इसके संरक्षक राज्य के साथ गाढ़े संबंध बनाकर भूमिका, बिल्डर बन जाते हैं। यह मुनाफाखोर मीडिया का समय है। इसका पहला और अन्तिम लक्ष्य मुनाफा खोरी है। मीडिया या संचार माध्यम इसके लिए केवल प्रॉडक्ट या उत्पाद हैं। इसे काली नगदी से भी परहेज नहीं है। यह मीडिया पाठक-दर्शक ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र को टग रहा है...यह व्यापारी कृत मीडिया अलापता है कि ग्राहकों को जैसा चाहिए वैसा प्रसारित किया जाता है। इसकी पेज थ्री संपादक संस्था कोमा में है। इसका स्थान ब्रांड मैनेजर ने ले लिया है।”⁴

लोकतंत्र के तीन स्तम्भ विधायिका, कार्यपालिका, एवं न्यायपालिका की कार्यपद्धति से आमजन पहले ही निराश था। इसमें सुधार लाने की आशा लोगों ने मीडिया से लगा रखी थी क्योंकि इसे लोकतंत्र का सजग प्रहरी तथा आमजन के हितों का पैरोकार माना जाता था लेकिन जनता विज्ञापन एवं मुनाफाखोरी के लालच में इसके बदलते चाल, चरित्र और चेहरे से काफी निराश हो चली है। यह इण्डिया का पैरोकार बनता जा रहा है। भारत यानी आमजन से इसका सरोकार कम होता जा रहा है। 2009 के चुनाव में आर्थिक लाभ हेतु पेड न्यूज की संस्कृति अपनाने से मीडिया की साख और भी गिर गयी जिससे लोगों में अखबारों में छपी खबरों की विश्वसनीयता घटी है। इस सन्दर्भ में बसंत कुमार तिवारी का यह कहना उचित है कि “नैतिक मूल्यों का जिस तरह कम और विलुप्त होना अन्य क्षेत्रों में है वैसा ही मीडिया में भी है। मीडिया सामने आकर सीधे बात करता है इसलिए वह नेपथ्य से अपनी भूमिका अदा नहीं करता। जो करता है वह प्रायोजित होता है। विज्ञापन या पेड न्यूज की तरह। नैतिक और सामाजिक मूल्यों की रक्षा करने की मीडिया की भूमिका लगभग समाप्त प्राय है।”⁵

आज मीडिया व्यावसाय में सबसे प्रभावशाली विज्ञापनदाता है। यह मीडिया की आमदनी के सबसे बड़े स्रोत होने के कारण अब मीडिया की विषयवस्तु को निर्धारित कर रहा है। मीडिया के कारोबार में सबसे ज्यादा उपेक्षित पाठक और दर्शक हैं। उसे क्या पढ़ना है या देखना है यह विज्ञापन दाता के इशारे पर मीडिया घराना करता है। पाठक/दर्शक मीडिया उत्पादों का खरीदार होता है लेकिन मीडिया इस ग्राहक को विज्ञापनदाताओं के हाथों बेचता है। विज्ञापनदाताओं के लिए शहरी अमीर खर्चीले पाठकों की जरूरत होती है जो विज्ञापित उत्पाद को खरीदे। इसी वजह से मीडिया में इलीट व शहरी लोगों के हितों का ध्यान ज्यादा रखा जाता है। अखबार की दिशा का निर्णायक सम्पादक बेहद कमजोर हो गया

है। अब सम्पादकों को सम्पादकीय सामग्री का निर्धारण ब्रांड मैनेजर या बिजनेस हेड के दिशा निर्देशन में करना पड़ रहा है क्योंकि मीडिया को जनता की आवाज बनकर विज्ञापन से मुनाफा कमाना है। बढ़ते विदेशी पूँजी निवेश तथा बाजारवाद पर बढ़ती निर्भरता के चलते सरकारी विज्ञापनों, अखबारी कागजों, महँगी प्रिंटिंग मशीनों आदि के लिए अखबार अब सरकार पर कम आश्रित हैं। विकसित देशों की तरह विकासशील देशों की कारपोरेट मीडिया उद्योग की जान तो विज्ञापन नाम के तोते में ही बस रही है। जनसरोकार से दरकिनार होकर मुनाफाखोरी के लिए मीडिया का विज्ञापन के लिए बहुरूपियापन पर चिन्ता व्यक्त करते हुए मैक ब्राइड कमीशन ने बहुत पहले ही अपनी रिपोर्ट में कहा था कि “हालांकि हम मानते हैं कि मीडिया के लिए आमदनी जरूरी है लेकिन ऐसे तरीके निकाले जाने चाहिए जिससे राष्ट्रीय और अंतर राष्ट्रीय संचार के प्रवाह पर बाजार और व्यावसायिक हितों के बुरे असर को कम किया जा सके।”⁶

पचास के दशक में भारतीय प्रेस आयोग ने बड़े अखबारों को 60 फीसदी समाचार और 40 फीसदी विज्ञापन छापने की सलाह दी थी। दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) ने केबल टेलीविजन नेटवर्क रूल 1994 के तहत टीवी चैनलों को एक घंटे में 12 मिनट तक ही विज्ञापन दिखाने का निर्देश दे रखा है लेकिन भारत के 82,237 से अधिक अखबारों तथा 831 से ज्यादा टीवी चैनलों का इन सुझावों एवं निर्देशों से कोई सरोकार नहीं है। एक ओर तो भारतीय मीडिया जनता को नैतिकता का पाठ पढ़ाती है वहीं मुनाफाखोरी के लिए स्त्री गुप्तागों को सुडौल एवं मर्दानगी बढ़ाने के लिए जापानी तेल, कैप्सूल, अण्डरवीयर, साबुन, क्रीम आदि के प्रचार हेतु स्त्री/पुरुषों के अर्धनग्न कामुक चित्रों वाले विज्ञापन छापकर/दिखाकर कोटा पत्रकारिता को बढ़ावा दे रही है।

विज्ञापन बाजार पर अपना कब्जा कायम रखने के लिए भारतीय प्रिन्ट मीडिया रीडरशिप सर्वे का सहारा लेती है। वैसे तो प्रिन्ट मीडिया में सबसे ज्यादा पाठक हिन्दी, मलयालम, तमिल, तेलगु, तथा बांग्ला अखबारों के पास हैं। सर्वे एजेंसिया प्रायः देश के जीवन स्तर को इंडेक्स बनाकर भी सर्वे करती हैं किन्तु अधिकांश मीडिया हाउस उम्र और आमदनी को आधार बनाकर सर्वे का आकड़ा प्रस्तुत करके अपने को नम्बर 1,2,3 घोषित कर विज्ञापन दाताओं को लुभाती हैं। वैसे भी विज्ञापन दाताओं को भी पैसे वाले शहरी युवावर्ग के पाठकों वाले अखबारों की तलाश रहती है क्योंकि उनके मँहगे विज्ञापित उत्पाद तो वही खरीद सकते हैं। “यही वजह है कि विज्ञापन के बाजार में हिन्दी का एक पाठक जितने रूपये में बिकता है, उसकी तुलना में अंग्रेजी का एक पाठक नौ गुनी कीमत में बिकता है। अन्य भारतीय भाषाओं के पाठकों के मुकाबले अंग्रेजी के पाठकों की हैसियत 13.

4 गुना आँकी जाती है। इस वजह से अंग्रेजी के प्रकाशन अपेक्षाकृत कम बिकने के बावजूद भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों से ज्यादा कमाई कर ले जाते हैं।⁷ इसी कारण से दुनिया में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले अखबार दैनिक जागरण, अधिक प्रसार संख्या वाले दैनिक भास्कर तथा अधिक दर्शकों वाले इण्डिया टीवी की विज्ञापन के द्वारा होने वाली आमदनी टाइम्स आफ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स तथा एन.डी. टीवी से कम है।

आज अखबारों में आमदनी का लगभग दो तिहाई स्रोत बना विज्ञापन, जनता की आवाज होने का ढोंग रचने वाले मुख्यधारा के अखबारों के कंटेंट को प्रभावित कर उन्हें अपने इशारे पर नाचने को मजबूर कर दिया है जिससे बड़े अखबारों की निर्भरता बिफ्री के पैसों पर कम होती जा रही है। कारपोरेट मीडिया अधिक पन्नों का अखबार कम कीमतों पर बेचकर एक तरह का प्राइस वार छोड़कर एक ओर छोटे अखबारों को बन्द कराता जा रहा है। वहीं अधिक पन्नों के साथ-साथ मुफ्त में बुकलेट परिशिष्ट पाठकों को बाँटकर इनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों से माला-माल होता जा रहा है। इसी गणित के तहत तो लंदन का दैनिक अखबार 'मेट्रो' तथा सिंगापुर का 'टुडे' अखबार पाठकों को मुफ्त दिया जाता है। बांग्लादेश, पाकिस्तान के अखबारों को विज्ञापन कम मिलने के कारण पाठकों को 6 रूपया से अधिक में अखबार खरीदना पड़ता है। वहीं भारत के सबसे अधिक प्रसार संख्या वाले अखबार दैनिक जागरण के राजस्व का बड़ा भाग विज्ञापनों से आता है। "मार्च 2009 में खत्म हुए साल में दैनिक जागरण की कुल आमदनी में विज्ञापनों का हिस्सा 72.12% था जबकि एक साल पहले यह आकड़ा 71.91% था।"⁸

समाचार पत्र की आय का प्रमुख स्रोत बना विज्ञापन अब तो सम्पादकीय सामग्री को भी नियंत्रित करने लगा है। अखबार मुनाफा कमाने के लिए लगातार विज्ञापन दाताओं के दबाव में यह कोशिश कर रहे हैं कि कैसे वह अपने को समृद्ध शहरी युवाओं और महिलाओं की लाइफ स्टाइल से जोड़े क्योंकि महँगे उत्पादों के सबसे अच्छे खरीदार वही हैं। इसी वजह से अब अखबारों की खबरें व फीचर आमजन के बजाय अमीरों पर केन्द्रित होती हैं। विज्ञापनदाता अब तो पाठकों का विश्वास जीतने हेतु सम्पादकीय विभाग पर अपने उत्पाद के विषय में खबर की तर्ज पर लिखने का दबाव डाल रहे हैं। ताकि उन्हें समाचार पत्र की विश्वसनीयता का लाभ मिल सके। आज का कारपोरेट मीडिया केवल उन पाठकों/दर्शकों के लिए चिन्तित रहता है जिनके जेब में महँगे उत्पादों को खरीदने का पैसा है। इसीलिए तो दलित आदिवासी मुसलमानों के धार्मिक पर्वों की मीडिया में कवरेज सिख, इसाई तथा हिन्दू त्योहारों की तुलना में कम होती है। उर्दू अखबारों को महँगे उत्पादों के विज्ञापन न मिल पाने के कारण ही कारपोरेट मीडिया उनको निकालने

में कोई रुचि नहीं ले रहा है। मीडिया घराना केवल अमीर शहरी युवाओं युवतियों को आकर्षित कर विज्ञापनदाताओं के हाथों बेचने के लिए ही अखबारों में हिन्दी, फारसी, उर्दू, देशी शब्दों के स्थान पर अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अधिक कर रहा है।

अब तो भारतीय मीडिया वंचित समाज, कमजोर लोगों के हक-हकूक की चिंता के बजाय केवल विज्ञापन एवं मुनाफा के लालच में बाजार के नियंत्रण में है। बाजार अंतिम छोर तक अपनी पहुँच बनाने के लिए मीडिया को माध्यम बना लिया है। बाजार तो आदमी को हमेशा माल के रूप में देखता है। इसीलिए तो आज का मीडिया बाजार माध्यम बन चुका है। मीडिया पर बढ़ते बाजार के नियंत्रण को उजागर करते हुए पुष्पराज ने लिखा है कि "खुले बाजार की उदारवादी आर्थिक नीति ने मीडिया के स्वामी सेट-साहूकारों को ज्यादा पागल बना दिया है। इन्हें लगा, यह अवसर और चूकेगें तो छूटेंगे। एक होड़ चली-ज्यादा से ज्यादा पाठक और ज्यादा से ज्यादा विज्ञापन जुटाने की। पाठक ग्राहक होगा, ग्राहक विज्ञापन होगा, विज्ञापन मुनाफा होगा। मुनाफे के इस बाजार ने मीडिया को बड़ा उद्योग जरूर बना दिया है, पर पैसे के खेल में विवेक पीछे छूट गया। मीडिया की भाषा बदल गयी। गाँव गिरांव, किसान आदिवासी, गरीबी-जनांदोलन ये सब विज्ञापन के स्रोत नहीं हैं। जो विज्ञापन नहीं दिला सकते, उनके लिए मीडिया कितनी जगह दे। मीडिया में होड़ लगी है, यह बताने की कि बाजार क्या चाहता है।"⁹

कृषि प्रधान देश भारत 6.27 लाख गाँवों में बसता है। 125 करोड़ आबादी में से गाँवों में रहने वाले 70 फीसदी लोगों के लिए गरीबी जीवन का सच है। भारत की 52 फीसदी आबादी कृषि से जुड़ी है। जनता की आवाज और हितैशी बनने का दावा करने वाली मीडिया तो विज्ञापन के लोभ में अधिकांश समय और स्थान शहरी भद्रलोक की गतिविधियों के लिए देता है। उसके लिए ग्रामीण समाचार तो अछूत के समान है। ग्रामीण समाचार मीडिया में तभी स्थान पाता है जब कोई बड़ा हादसा होता है। डॉ०सुशील त्रिवेदी ने मुनाफाखोर मीडिया के इस चरित्र को बयॉ करते हुए लिखा है कि "जिस तरह विश्व मीडिया में तीसरी दुनिया के लोग स्थान नहीं पाते हैं और तीसरी दुनिया की खबरें प्रकाश में नहीं आती हैं उसी तरह भारत के तथा कथित राष्ट्रीय मीडिया और प्रदेशों के बड़े अखबारों में ग्रामीण क्षेत्र की खबरें उपेक्षित रहती हैं। हम नयी विश्व सूचना तथा संचार व्यवस्था में तीसरी दुनिया के स्थान के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं।"¹⁰

वास्तव में किसी भी लोकतांत्रिक देश के सर्वांगीण विकास में मीडिया का अमूल्य योगदान होता है भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए राष्ट्रनायकों ने अखबारों को अमोघ अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने देश की आजादी, राष्ट्रीय एकता अखण्डता, धार्मिक एकता अछूतोद्धार व सामाजिक

समरसता आदि अनेक पुनीत कार्यों से जनता को जोड़ने हेतु एवं अनेक जनान्दोलन को सफल बनाने के लिए समाचार पत्रों का सहारा लिया। आजादी के पूर्व राष्ट्रीयक पत्रकारों द्वारा सम्पादित इन्हीं पुनीत कार्यों के चलते जनमानस में मीडिया के प्रति एक विशेष आदर का भाव है। पूर्व में देश के समग्र विकास के लिए समर्पित अखबारों द्वारा स्थापित उच्च आदर्शों एवं कार्यों के कारण ही आज भी जनता मीडिया को जनसेवक, पाँचवावेद, भविष्यद्रष्टा, वाचडाग एवं लोकतंत्र का सजग प्रहरी आदि विभिन्न रूपों में देखती है। निश्चित रूप से आज के तकनीक एवं स्पर्धा प्रधान युग में मीडिया को संचालित करने के लिए पूँजी की आवश्यकता है। मीडिया का प्राणवायु विज्ञापन उसके लिए पैसे का अच्छा स्रोत है किन्तु अपने उद्देश्यों एवं आदर्शों से भटक कर मुनाफाखोरी के लिए मीडिया की निर्भरता दिनों-दिन जिस तरह से विज्ञापन पर बढ़ती जा रही है उससे देश एवं जनता का भला नहीं होने वाला है। विज्ञापन जहाँ मीडिया को आर्थिक सशक्तता प्रदान करता है वहीं उसकी निर्भीकता एवं स्वतंत्रता पर अंकुश भी लगाता है। इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी कभी भी अपने अखबारों में विज्ञापन प्रकाशन के पक्षधर नहीं थे। वे हमेशा ग्राहक संख्या बढ़ाकर अखबार को स्वावलम्बी बनाने की वकालत की। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था 'नवजीवन' द्रव्योपार्जन का साधन नहीं है। वह प्रत्येक प्रवृत्ति का प्रचार साधन भी नहीं। वह तो केवल मेरे विचारों के प्रचार का ही साधन है। 'नवजीवन' कर्ज लेकर नहीं चलाया जा सकता। वह एक या अनेक मित्रों से दान लेकर पाठकों को मुफ्त भी नहीं दिया जा सकता। 'नवजीवन' के पाठक खुद अपने को उसका मालिक समझें। उन्हें जबतक उसमें दिये गये विचार पसन्द आते हैं, तबतक वे उसे मूल्य देकर लें और सम्भाल कर रखें, क्योंकि मैं प्रति सप्ताह उसमें अपनी आत्मा उड़ेलता हूँ और जानता हूँ कि जिस रचना में कोई अनपढ़ मनुष्य भी अपनी आत्मा उड़ेलता है, उसको पढ़ने और उसपर विचार करने में कल्याण है।'¹¹

भारत का प्रिन्ट इलेक्ट्रानिक एवं सोशल मीडिया विज्ञापन के लोभ में संवेदनहीन हो चला है। आज कारपोरेट घरानों से संचालित होने वाले अखबारों और टीवी चैनलों को केवल इण्डिया के लोगों की फिक्र है उसे हाशिये पर पड़े भारत के लोगों की कोई परवाह नहीं है। मुनाफाखोरी की लत के चलते आज के अखबार आजादी के पूर्व समाज व देश के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य से भटककर केवल विज्ञापनदाताओं के इशारे पर पश्चिमी भोगवादी संस्कृति के पैरोकार बनते जा रहे हैं। आज जिस तरह से विज्ञापनों में नकारात्मक बातों एवं दृश्यों पर जोर देकर उपभोक्ताओं को आकर्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ इसी तर्ज पर राजनीतिक दल भी वोट बैंक की राजनीति में देश के समग्र विकास के मुद्दे से हटकर वह सबकुछ कर रहे हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए। समाज के पथ

प्रदर्शक की भूमिका निभाने वाला मीडिया भी अपने दायित्वों से भटक कर समाज व देश विरोधी नकारात्मक खबरों को परोसने में मशगूल है। मुख्यधारा की मीडिया के इस कृत्य को ही देखकर विश्वनाथ सचदेव ने लिखा है कि "अखबारों की निगाह सर्कुलेशन पर रहती हैं और इलेक्ट्रानिक मीडिया की टीआरपी पर। एक अंधी दौड़ में शामिल है सारा मीडिया। इसी के चलते समाचार की परिभाषा बदल गयी है; मीडिया का चेहरा बदल गया है। ऐसा लगने लगा है जैसे मीडिया सनसनी फैलाने की किसी स्पर्धा में शामिल है। एक तरफ वह सबकुछ किया जा रहा है, जो इस उद्योग का नफा का सौदा बनाये और दूसरी ओर इस बात को भूलने की कोशिश हो रही है कि यह एक विशिष्ट उद्योग है।"¹²

संदर्भ ग्रन्थ –

1. प्रियदर्शिनी सुषमा : पराड़कर के विचार (पराड़कर और हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियाँ सम्पादक अच्युता नंद मिश्र, बच्चन सिंह) विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1987 पृ.78
2. द ग्लोबल मीडिया, हरमन और मैक चेस्नी, भारतीय संस्करण, 1998, पृ.6
3. त्रिपाठी जयप्रकाश, मीडिया हूँ मैं, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2014, पृ.212-213
4. वही, पृ.183-184
5. तिवारी बसंत कुमार, सबसे बड़ा है विश्वसनीयता का संकट, मीडिया विमर्श, भोपाल सितम्बर 2013, पृ. 61
6. मेनी वायसेस, वनवर्ल्ड, आक्सफोर्ड और आई.बी.एच., 1982, पृ. 260
7. फिक्की – के.पी.एम.जी. मीडिया रिपोर्ट, 2009 पृ. 98
8. जागरण प्रकाशन सालाना रिपोर्ट 2008-2009, पृ 29
9. पुष्पराज, मीडिया धत्करम पर रोने का मतलब.....! संचार माध्यम भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, जुलाई-दिसम्बर 2005, पृ. 24
10. त्रिवेदी डॉ. सुशील, 'उपभोक्ता गाँव में, खबरें शहर की', मीडिया विमर्श, भोपाल, जुलाई-सितम्बर 2013, पृ. 54
11. व्यास देव कृष्ण, गाँधी जी से प्रेरित हिन्दी पत्रकारिता (भारत मेहिन्दी पत्रकारिता, डॉ० रमेश जैन), बोहरा प्रकाशन, जयपुर, 1989, पृ.94-95
12. सचदेव विश्वनाथ : 'ताकि जनतंत्र और पत्रकारिता दोनों जिंदा रहे मीडिया विमर्श, भोपाल, जुलाई-सितम्बर 2009, पृ. 9